

# विज्ञान के क्षेत्र में चीन की छलांगें

डॉ. डी. बालसुब्रमण्यन

लगभग हर हफ्ते हम वैज्ञानिकों को अपने विज्ञानमापी साथी डॉ. सुभाष अरुणाचलम की ढेरों ईमेल का सामना करना पड़ता है। विज्ञानमापी वह व्यक्ति होता है जो वैज्ञानिकों, संस्थाओं और राष्ट्रों की वैज्ञानिक उत्पादकता का मात्रात्मक विश्लेषण करता है। डॉ. अरुणाचलम की ईमेल के दो प्रमुख विषय होते हैं।

एक विषय होता है वैज्ञानिक प्रकाशनों तक खुली पहुंच यानी ओपन एक्सेस का। इनमें काफी भावुकता से इस बात की पैरवी की जाती है कि वैज्ञानिक रिपोर्ट्स, शोध पत्र और शोध पत्रिकाएं दुनिया भर में लोगों की पहुंच के लिए खुले होने चाहिए। इन पर मात्र व्यापारिक हितों का दबदबा नहीं होना चाहिए।

ईमेल का दूसरा विषय वैज्ञानिक उत्पादकता और दुनिया भर के विभिन्न राष्ट्रों द्वारा अपनाई जा रही नीतियां होता है। इन ईमेल में यह स्पष्ट किया जाता है कि विज्ञान व टेक्नॉलॉजी के वैश्विक अखाड़े में भारत की स्थिति क्या है।

डॉ. अरुणाचलम की ताज़ा ईमेल में डॉ. जोनाथन एडम्स की एक रिपोर्ट है जो न्यू साइन्टिस्ट के 6 जनवरी के अंक में प्रकाशित हुई है। इसका शीर्षक है: 'गेट रेडी फॉर चाइनाज़ डॉमिनेशन इन साइन्स' (विज्ञान में चीन के वर्चस्व के लिए तैयार रहो)। यह आलेख हमारी रातों की नींदें उड़ाने और हमें सक्रिय कर देने की क्षमता रखता है। और यह सक्रियता मात्र हड़बड़ी में कुछ भी कर देने की नहीं बल्कि एक लंबे मिशन की होनी चाहिए।

ज़रा इन तथ्यों पर नज़र डालिए। 1998 में चीन का शोध-आउटपुट 20,000 शोध पत्र प्रति वर्ष था। 2006 में यह आंकड़ा 83,000 हो गया था, जो जापान, यू.के. और जर्मनी से अधिक था। 2009 में चीन से प्रति वर्ष शोध पत्रों की संख्या 1,20,000 थी जो यू.एस. से प्रकाशित शोध पत्रों (3,50,000) के बाद दूसरे नंबर पर थी।

यदि हम मान भी लें कि सिर्फ संख्याएं ही गुणवत्ता का पैमाना नहीं होतीं, तो यह देख सकते हैं कि दुनिया

का वैज्ञानिक समुदाय चीन के बारे में क्या सोचता है। चीन के साथ युरोप, यू.एस. और यू.के. के अलावा कोरिया व सिंगापुर के संयुक्त उद्यमों में लगातार वृद्धि हो रही है। और ये संयुक्त उद्यम बराबरी के हैं। ये ऐसे संयुक्त अनुसंधान नहीं हैं जहां चीन एक निष्क्रिय साझेदार की तरह अनुसंधान की सामग्री व लोग उपलब्ध कराता हो और इनका उपयोग करके पश्चिमी शोधकर्ता दिलचस्प जानकारियां हासिल करके प्रगति करते हों। फिलहाल चीन जिन नीतियों पर चल रहा है उनमें चीन के अंदर क्षमताओं का निर्माण करना, पश्चिमी देशों में बसे चीनियों को लौटने को आकर्षित करना और उन्हें विश्व स्तरीय सुविधाएं तैयार करने में मदद करना और स्वतंत्रता देना शामिल हैं।

अब ज़रा अग्रणी वैज्ञानिक शोध पर नज़र डालें। 2006 में क्योटो के यामानाका ने वह विस्फोटक प्रयोग किया था जिससे यह पता चला था कि आप शरीर की कोई भी कोशिका लेकर उसे स्टेम कोशिका बनने को प्रेरित कर सकते हैं।

और 2009 आते-आते चीन के दो समूहों ने चूहों की त्वचा कोशिकाओं को स्टेम कोशिकाओं में बदलने को प्रेरित करने में सफलता प्राप्त कर ली थी। और तो और, उन्होंने दो कदम और आगे जाकर इन स्टेम कोशिकाओं से ज़िन्दा चूहों की दो पीढ़ियां भी विकसित कर डालीं।

विज्ञान में दूसरा मंत्र आजकल नैनो टेक्नॉलॉजी का है। नैनो-विज्ञान और नैनो टेक्नॉलॉजी के क्षेत्र में शोध प्रकाशनों के मामले में चीन दुनिया में सबसे आगे है। वहां इस क्षेत्र में करीब 5000 शोधकर्ता और 600 कंपनियां लगी हुई हैं। और हाल ही में हमने देखा कि चीन ने दुनिया की सबसे तेज़ पेसेंजर ट्रेन शुरू कर दी। इस ट्रेन ने वुहान से गुआंगजु की 1070 किलोमीटर की दूरी मात्र 2 घण्टे 45 मिनट में तय की।

ईमेल का एक और पुलिंदा होता है जो मुझे किसी विज्ञानमापी से नहीं बल्कि एक कानून विशेषज्ञ से मिलता

है। न्यायमूर्ति टी.एन.सी. रंगराजन एक मित्र हैं जिनकी रुचियों में तमाम विषय आते हैं। वे विविध विषयों पर ईमेल भेजते रहते हैं।

उनकी हाल की एक ईमेल में संयोगवश चीन के विज्ञान से सम्बंधित एक आलेख था। यह आलेख शैरॉन ला फ्रेनिएर का है जो न्यू यॉर्क टाइम्स के 7 जनवरी 2010 के अंक में छपा था। शीर्षक है : 'फाइटिंग ट्रेड, चाइना इज़ ल्योरिंग साइन्टिस्ट होम' (रुझान का मुकाबला करते हुए, चीन वैज्ञानिकों को वापसी के लिए रिझा रहा है)। ला फ्रेनिएर बताती हैं कि जीव वैज्ञानिक शी यिगॉन्ना ने 1 करोड़ डॉलर का एचएचएमआई अनुदान टुकराकर बीजिंग में त्सिनगुआ विश्वविद्यालय में डीन का पद संभालने का हेरतअंगेज़ फैसला लिया है।

वे लिखती हैं, "श्रेष्ठ प्रतिभा के पलायन, जो खुलेपन के साथ पिछले तीन दशकों में तेज़ी से हुआ है, को पलटने को कटिबद्ध चीन का नेतृत्व वैज्ञानिकों और शोधकर्ताओं को घर लौटाने के लिए आज भरपूर वित्तीय संसाधनों - और साथ में राष्ट्रीय गौरव - का इस्तेमाल कर रहा है।"

ला फ्रेनिएर कहती हैं कि डॉ. राओ यी, जिन्होंने 2007 में पेकिंग विश्वविद्यालय में डीन का पद संभालने के लिए नॉर्थ-वेस्टर्न विश्वविद्यालय छोड़ दिया था, का मामला अमरीका के 'आत्म-संतोष' और चीन के 'आत्म-निरीक्षण' के बीच का अंतर स्पष्ट कर देता है।

क्या भारत को भी आत्म निरीक्षण नहीं करना चाहिए? यह दलील ज़्यादा कारगर नहीं है कि चीन तो एकछत्रवादी है जबकि हम अपने प्रजातंत्र में फंसे हुए हैं। हमें ज़रूरत है निष्ठा, अनुशासन और दृढ़ निश्चय की। जब हम इसरो या परमाणु ऊर्जा विभाग के ज़रिए मिशन शुरू करते हैं, तो नतीजे मिलते हैं। तो विज्ञान व टेक्नॉलॉजी में ऐसा क्यों नहीं हो सकता? जैसा कि प्रधान मंत्री ने विज्ञान कॉन्ग्रेस में कहा, विज्ञान को सरकारी व संस्थागत जकड़नों से मुक्त करने की ज़रूरत है।

सरकारी संस्थाओं को चाहिए कि बातों की बजाय पैसा दें, और शोधकर्ताओं को अपने फैसले करने दें।

हालिया अतीत में भारत ने अपना विज्ञान व टेक्नॉलॉजी निवेश काफी बढ़ाया है। इसे और बढ़ाने की - सकल घरेलू उत्पाद का 3 प्रतिशत तक बढ़ाने की ज़रूरत है। इससे विश्वविद्यालयीन शोध सशक्त होगा और उसकी गुणवत्ता भी बढ़ेगी। जब आप विश्वविद्यालयों को सशक्त करते हैं, तो देश की बौद्धिक शक्ति बढ़ती है।

वित्तीय संस्थाओं को मात्र सुरक्षित व सफल अल्प अवधि की परियोजनाओं को सहारा देने की बजाय असफलताओं के लिए पूरी गुंजाइश भी रखनी होगी। दुनिया भर में सरकारी संस्थाओं का यह रवैया व नीति हॉवर्ड ह्यूजेस मेडिकल इंस्टीट्यूट (एचएचएमआई) जैसे निजी प्रतिष्ठानों के एकदम विपरीत है, जो दीर्घावधि और लचीला वित्तीय समर्थन प्रदान करते हैं। भारत में मुझे सिर्फ टीआईएफआर और एनसीबीएस ही इस तरह के प्रतिष्ठान नज़र आते हैं।

हमें विदेशों में बसे भारतीय वैज्ञानिकों को वापिस बुलाने के प्रयास ठीक उसी तरह करने चाहिए जैसा चीन ने किया है। यही तरीका सूचना टेक्नॉलॉजी व प्रबंधन क्षेत्र में अपनाया गया है। हमें यदा-कदा अय्यादुराई किस्म के अहंकार को नज़रअंदाज़ करना सीखना होगा।

हमें यह भी व्यवस्था करनी चाहिए कि प्रोजेक्ट लीडर्स को उस अनुदान का एक अंश प्राप्त हो, जो उनके प्रयासों से हासिल हुआ है। अन्यत्र ऐसा ही किया जाता है। और हमें सरकार से परे जाकर अमीरों को साधना होगा कि वे शोध के लिए फंड दें।

आज भारत में रईसों की एक बड़ी संख्या का दावा किया जाता है - देश में 52 अरबपति हैं। मगर इनमें से एक का भी हॉवर्ड, ह्यूजेस, रॉकफेलर, पैकार्ड, मेकआर्थर जैसा कोई प्रतिष्ठान नहीं है। इन्फोसिस ने ज़रूर एक शुरुआत की है, भले छोटे स्तर पर। यह एक अवसर है कि निजी प्रतिष्ठानों के ज़रिए विज्ञान व टेक्नॉलॉजी शोध के लिए वित्तीय समर्थन जुटाया जाए। इसी के माध्यम से श्रेष्ठ विचारों के लिए लचीला व दीर्घावधि वित्तपोषण हासिल हो जाएगा। मात्र सरकारी मदद पर निर्भर रहेंगे, तो बहुत हुआ, तो जहां हैं वहीं बने रहेंगे। (स्रोत फीचर्स)